कहानी 'किस्सागोई' की

पूरी दुनिया में किस्सागोई फिर से पॉपुलर हो रही है। विश्व में किस्सागोई अलग-अलग फार्मेट में हजारों साल पहले से मौजूद है। अपने देश भारत में चौपाल और चौबारों में किस्सागोई का खूब ट्रेंड था। सर्दियों में अलाव के किनारे देर रात तक किस्से कहे और सुने जाते थे। साथ में अलाव में भुने आलू और गंजी (रतालू) अलग ही मजा देती थी। इसे आर्ट फार्म में दुनियाभर में मकबूल करने का श्रेय ईरान को जाता है। ईरान ने इसे एक नया रूप और अंदाज दिया। ईरान के किस्सागो मुगलों के जमाने में भारत आए। यह दरबार में बादशाहों को अपने दिलचस्प अंदाज में किस्सा सुनाया करते थे। इस तरह यह परंपरा बादशाहों के दरबारों से लेकर आम घरों तक फैली। पिछले दिनों बरेली में किताब उत्सव का आयोजन किया गया। इसमें लखनऊ के किस्सागो हिमांशु वाजपेयी भी आए। इस मौके पर उनसे किस्सागोई पर औपचारिक बातचीत हुई।

कुमार रहमान
बरेली

क्या होती है किस्सागोई

'किस्सा' का अर्थ है कहानी और 'गोई' का मतलब होता है कहना। इस तरह किस्सागोई का मतलब 'कहानी कहना' है। यह तो हुआ शाब्दिक अर्थ, लेकिन सिर्फ कहानी कह देना ही किस्सागोई नहीं है। कहानी को एक खास अंदाज में कहना या सुनाना ही किस्सागोई है। इसमें रवानी के साथ बयानी बहुत अहम तत्व है। साथ ही सुनाने का अंदाज ऐसा हो, जिसमें कल्पना, कौतूहल और नाटकीयता का भरपूर समावेश भी होना चाहिए। अगर यह सारे तत्व नहीं होंगे, तो वह महज सपाटबयानी ही कहलाएगी और सुनने वाले को जरा भी मजा नहीं आएगा।

हिमांशु वाजपेयी

भारत में कहानियां

बतकही के तौर पर भारत में कहानी सुनाने का इतिहास पुराना है। हिमांशु कहते हैं, "भारत कहानियों की पुरानी पीठ है। गुणाढ्य ने 'बृहत्कथा' लिखी थी। इस महाकाव्य में कहानी कही गई है। बाद में सोमदेव ने 'कथा सरित सागर' नाम से एक रचना की। इस किताब में सैकड़ों की तादाद में कहानियां हैं।" हिमांशु की मानें तो 'अलिफ लैला' या 'अरेबियन नाइट्स' की कहानियां 'कथा सरित सागर' से ही प्रेरित हैं।

किस्सागोई और ईरान

किस्सागोई दुनियाभर में ईरान से पहुंची। ईरान ने इसे क्लासिकी में ढाला और इसे कलात्मक अंदाज में पेश किया। अमीर हमजा की कहानियां फारसी से उर्दू में आईं, जिन्हें किस्सागोई के तौर पर पेश किया जाने लगा। इसी तरह से बागो-बहार उर्फ किस्सा चहार दरवेश भी अपने जमाने में किस्सागोई के तौर पर बहुत लोकप्रिय रहीं।

लखनऊ के आखिरी दास्तानगो

हिमांशु वाजपेयी जैसे लोग लखनऊ में फिर से किस्सागोई को लोकप्रिय बनाने की कोशिश कर रहे हैं। उन्होंने बताया कि लखनऊ के आखिरी किस्सागो मीर बाकर अली थे। वह बड़े खास अंदाज में कहानियां सुनाया करते थे। लोग पैसे देकर, उनसे किस्सा सुना करते थे। बाद में मनोरंजन के दूसरे साधन आ गए, तो यह फार्मेट धीरे-धीरे खत्म होने लगा। हिमांशु ने बताया कि बाद में बाकर अली को काम मिलना भी बंद हो गया। बाद के दिनों में वह गुजर-बसर के लिए छालियां (पान की डली) बेचा करते थे।

किस्सागोई और दास्तानगोई में फर्क

बातचीत में हिमांशु वाजपेयी बताते हैं कि किस्सागोई और दास्तानगोई में फर्क होता है। किस्सागोई में एक छोटी कहानी होती है, जबकि दास्तानगोई में लंबी कहानी होती है। यानी इसमें कई छोटी-बड़ी घटनाओं का समावेश होता है। इन तमाम घटनाओं को नाटकीय तरीके से इस तरह से पेश किया जाता है कि सुनने वाले को भरपूर मजा मिल सके।

अमीर खुसरो पहले दास्तानगो

दुनियाभर में लिखावट से पहले सुन और याद करके ही तमाम ज्ञान और

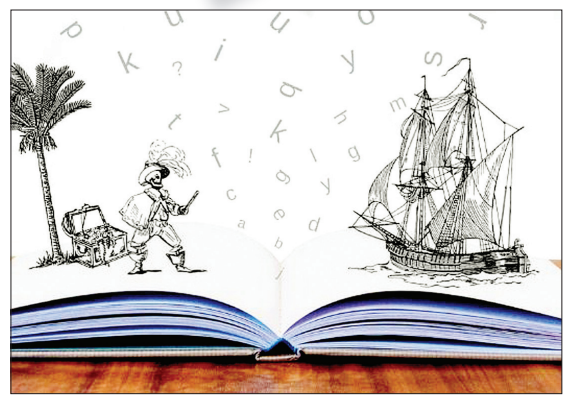

कहानियां एक-पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचती रही हैं। गांवों में चौपालों-चौबारों और खेत-खलिहानों में बैठकी के दौरान मजेदार अंदाज में कहानी सुनाने का इतिहास बहुत पुराना है। हिमांशु ने बताया कि भारत के पहले दास्तानगो अमीर खुसरो थे। उन्होंने हजरत निजामुद्दीन औलिया को दास्तान सुनाई थी। इस तरह से इसके आर्ट फार्म की शुरुआत हुई।

यूथ में साहिर सबसे ज्यादा पॉपुलर

हिमांशु देश के तमाम हिस्सों में किस्सागोई के लिए जाने जाते हैं। एक सवाल पर उन्होंने बताया कि वह ज्यादातर फ्रीडम फाइटर या आजादी की जंग पर किस्से सुनाते हैं। उनका मकसद है नई पीढ़ी को क्रांतिकारियों और आजादी की लड़ाई से परिचित करना। इसके अलावा वह हिंदी और उर्दू के लेखकों के बारे में भी किस्से सुनाते हैं। मजाज लखनवी पर भी वह किस्सागोई करते हैं। वह कहते हैं कि युवाओं के बीच में साहिर लुधियानवी के किस्से खासा मकबूल हैं।

लखनऊ और उत्तराखंड: प्रवासी समाज की साझा सांस्कृतिक विरासत

कभी उत्तर प्रदेश के पर्वतीय अंचल के नाम से जाना जाने वाला वर्तमान का उत्तराखंड राज्य आज बहुत तेजी से वर्तमान में बीजेपी के युवा मुख्यमंत्री पुष्कर सिंह धामी के नेतृत्व में अपने मूल स्वरूप देव संस्कृति अथवा उत्तराखंड की सनातन संस्कृति की जड़ों की ओर लौट रहा हैं, लेकिन उत्तराखंडी निवासियों एवं प्रवासी बंधुओं का आजादी के पहले से स्वतंत्रता आंदोलनों में तथा उसके बाद आजादी के बाद के भौगोलिक राजनैतिक तथा सामाजिक परिदृश्य में उत्तर प्रदेश और उसकी राजधानी लखनऊ से हमेशा से एक गहरा नाता रहा है, जो कि आज एक बड़ी विरासत के रूप में हमारे सामने है। कभी एक समय विकास से कोसों दूर रहे उत्तराखंड के सुदूर पहाड़ी अंचलों के कठिनाई भरे जीवन ऊबड़-खाबड़ पथरीले रास्तों में जीवन की डगर बहुत मुश्किल थी, ऐसे में आजादी के पहले से ही उत्तराखंड के मूल निवासियों का रोजी, रोटी, रोजगार की तलाश में अपनी जमीन से लगातार पलायन होने से राजधानी दिल्ली सहित देश के कोने-कोने में जाकर बसने वाले के एक नए प्रवासी उत्तराखंडी समाज का निर्माण हुआ, जो देश विभिन्न राज्यों में स्थित प्रमुख शहरों में अपने बच्चों के अच्छे भविष्य, बेहतर शिक्षा तथा मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए बसने लगा, पहाड़ की संस्कृति और पहचान से विशेष अनुराग होने के कारण प्रवासी उत्तराखंडी समाज हमेशा सांस्कृतिक और सामाजिक रूप से अपनी जड़ों से जुड़ा रहा है।

मोहन सिंह बिष्ट
समाजसेवी

राष्ट्र के प्रति पूर्ण निष्ठा एवं समर्पण तथा राष्ट्रीयता की भावना से ओत-प्रोत स्वभाव से सीधे सरल, मेहनती और ईमानदार होने के कारण धीरे-धीरे बड़ी संख्या में उत्तराखंडी प्रवासी समाज के लोग, देश की गौरवशाली सेना सहित, समाज के विभिन्न क्षेत्रों सामाजिक, राजनैतिक, कला, साहित्य, सिनेमा शिक्षा, खेल जगत, व्यवसाय, नौकरी तथा प्रशासनिक सेवा इत्यादि में देश के विकास और समृद्धि के लिए निरंतर अपना महत्वपूर्ण योगदान देने लगे, जो आज भी बदस्तूर जारी है। उत्तर प्रदेश का ही अंग होने के कारण राजधानी लखनऊ के विकास और समृद्धि में भी उत्तराखंडी प्रवासी बंधुओं के महत्वपूर्ण योगदान को नकारा नहीं जा सकता है। आज भी एक अनुमान के अनुसार लगभग 5 लाख से अधिक संख्या में लखनऊ की दो लोकसभा सीटों के अंतर्गत आने वाले 9 विधानसभा क्षेत्रों में उत्तराखंडी प्रवासी बंधुओं की बस्तियां हैं, जिसमें बड़ी संख्या में उत्तराखंड के प्रवासी बंधु बहुत ही प्रेम और सौहार्द से रहते हैं। पर्वतीय समाज की उपलब्धि और योगदान इसी बात से परिलक्षित होता है कि वर्तमान में उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ और लखनऊ की महापौर श्रीमती सुषमा खर्कवाल भी इसी उत्तराखंडी प्रवासी समाज से ही आते हैं। इसके अलावा लखनऊ में प्रवासी उत्तराखंडी समाज की जड़े गहरे तक अपनी पैठ बनाए हुए हैं।

उत्तराखंडी प्रवासी बंधुओं का उत्तराखंड के क्षेत्र से पलायन कर देश के मैदानी क्षेत्रों बसने के समय और उद्देश्य को तीन काल खंडों और प्रमुख आवश्यकताओं के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। प्रथम 40 से 60 के दशक में रोजी-रोजगार प्रमुख आवश्यकता जीवनयापन की विभीषिका से रोटी के लिए जद्दोजहद थी। दूसरा 70 से 90 का दशक अच्छी शिक्षा रोजगार और परिवार के अच्छे भविष्य के लिए स्थाई निवास की जद्दोजहद थी तथा 90 के दशक के अंतिम वर्षों में उत्तराखंड अलग राज्य की मांग ने जोर पकड़ा और लखनऊ का उत्तराखंडी प्रवासी समाज की उत्तराखंड राज्य आंदोलन के समर्थन में कूद पड़ा।

9 नवंबर सन् 2000 में उत्तराखंड को अलग राज्य का दर्जा मिला। 2000 से 2020 के दशक में वर्तमान तक सांस्कृतिक सामाजिक उत्थान और ऊंचे-ऊंचे सपनों को पंख लगना तथा उत्तराखंडी प्रवासी समाज में उच्च पद और सामाजिक सम्मान पाने की जद्दोजहद में उत्तर प्रदेश की राजधानी लखनऊ भी इससे अछूता नहीं रहा है। 40 से 50 के दशक में, जहां एक ओर पूरे देश में उत्तराखंडी प्रवासी समाज के लोगों ने समाज के हर क्षेत्र में अपनी योग्यता साबित की है, बल्कि देश में विभिन्न क्षेत्रों में महत्वपूर्ण स्थान बनाया। वहीं राजधानी लखनऊ में भी प्रवासी बंधु सामाजिक संस्कृतिक सहित विभिन्न क्षेत्रों में अपनी उपलब्धियों से स्थानीय समाज के लोगों को भी आकर्षित करते रहते हैं।

प्रवासियों की आने वाली पीढ़ी के लिए धरोहर

उत्तराखंड की संस्कृति और समाज, सांस्कृतिक और सामाजिक रूप से समृद्ध और हमेशा से अपनी संस्कृति के प्रति सजग और समर्पित रहा है, जिसके फलस्वरूप लखनऊ में निवास करने वाले उत्तराखंडी प्रवासी बंधु क्षेत्र के विकास के लिए कभी भी केवल सरकार पर आश्रित नहीं रहे, बल्कि अपनी संस्कृति के प्रदर्शन और सामाजिक सांगठनिक एकता के बल पर अपने स्वयं के प्रयासों से लखनऊ के विभिन्न क्षेत्रों में उनके द्वारा बनाए गए सामुदायिक केंद्र, संगठनों के भवन और भव्य मंदिर तथा देवालय पूरे क्षेत्र के स्थानीय और प्रवासी बंधुओं को लाभान्वित करते हैं। इनकी स्थापना करने वाली लगभग अधिसंख्य प्रवासी विभूतियां आज हमारे बीच में नहीं हैं, लेकिन वर्तमान समय में उनकी पीढ़ी, उनकी धरोहर को बखूबी संभाल रही है। इन सभी के माध्यम से आगे आने वाली पीढ़ी को उनके पूर्वजों द्वारा दी गई धरोहर को संभालने के लिए प्रशिक्षित भी कर रही है।

उत्तराखंडी प्रवासी समाज की विरासत

उत्तर प्रदेश की राजधानी लखनऊ उत्तराखंडी प्रवासी समाज और संस्कृति की लंबी विरासत की गवाह है। आजादी से पहले चाहे लखनऊ हुए में स्वतंत्रता आंदोलनों में बढ़-चढ़कर प्रतिभाग हो, सुदूर उत्तराखंड के पहाड़ी क्षेत्रों को छोड़कर रोजी-रोटी की जद्दोजहद से अपनी कड़ी मेहनत और ईमानदारी के बल पर सुंदर उत्तराखंडी संस्कृति और समाज की रचना हो अथवा आज सामाजिक और सांस्कृतिक गतिविधियों का केंद्र बने विभिन्न उत्तराखंडी संगठनों के अपने निजी प्रयासों से खड़े सुंदर-सुंदर भवन और भव्य मंदिर-देवालय हों तथा इसके अलावा लखनऊ के विभिन्न क्षेत्रों में फैली उत्तराखंडी प्रवासी बंधुओं के संघर्ष समर्पण और हाड़-तोड़ मेहनत से बसाई गई प्रवासी बस्तियां हो, समाज के प्रबुद्ध वर्ग, जिसने साहित्य कला-संगीत के क्षेत्र में विभिन्न प्रकार के आयोजनों और पुस्तक की रचना से लखनऊ को कला और सांस्कृतिक रूप समृद्ध किया। आजादी के पहले संयुक्त प्रांत के प्रधानमंत्री तथा आजादी के बाद नवगठित उत्तर प्रदेश राज्य के प्रथम मुख्यमंत्री बने अपने राजनैतिक कौशल, जनता के लिए समर्पित जुझारू तथा आमजन में लोकप्रिय 'भारत रत्न' पं. गोविंद बल्लभ पंत, वीरचंद सिंह गढ़वाली, जन लोकप्रिय राजनेता पूर्व मुख्यमंत्री स्व. हेमवती नंदन बहुगुणा, विकास पुरुष एवं पूर्व मुख्य मंत्री स्व. नारायण दत्त तिवारी सहित समाज के विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत विभूतियां, जो आज हमारे बीच नहीं हैं। लखनऊ पीढ़ी-दर-पीढ़ी उत्तराखंडी संस्कृति एवं लोगों की सक्रियता और समर्पण से और अधिक तेजी से विकसित व समृद्ध हुआ। आज ये सभी राजधानी लखनऊ में आने वाली पीढ़ी को उत्तराखंडी प्रवासी बंधुओं की दी हुई विरासत है। इसके अलावा वर्ष भर कला-संस्कृति और साहित्य के क्षेत्र में बड़े-बड़े आयोजनों विभिन्न क्षेत्रों में उत्तराखंडी शैली में श्री रामलीलाओं का मंचन हो अथवा बड़े-बड़े मेले महोत्सव, जिसमें प्रमुख रूप से प्रत्येक वर्ष होने वाले उत्तरायणी मेला, उत्तराखंड महोत्सव और मुनाल महोत्सव से साथ-साथ विभिन्न साहित्यिक और समाज समागम से लखनऊ का संपूर्ण जनमानस जुड़ता है। सभी आयोजनों में तन-मन और धन से प्रतिभाग भी करता है। स्थानीय संस्कृति और उत्तराखंड की संस्कृति एवं लोग मानो एक ही रंग में रंग गए हों।

आर्ट गैलरी

पिकासो की 'फेम ए ला मोंट्रे'

पॉब्लो पिकासो की पेंटिंग 'फेम ए ला मोंट्रे' (Femme la montre), जिसे अंग्रेजी में Woman with a Watch यानी घड़ी वाली महिला के नाम से भी जाना जाता है। यह उनकी

प्रसिद्ध कृतियों में से एक है। यह पिकासो की प्रेमिका मैरी-थेरेस वाल्टर का एक चित्र है, जिसे उन्होंने 1932 में कैनवस पर उकेरा था। पेंटिंग में पिकासो की प्रेमिका वाल्टर नीले रंग की पृष्ठभूमि के सामने एक सिंहासन जैसी कुर्सी पर बैठी दिखाई देती है। यह पेंटिंग पिकासो की 'सुनहरी म्यूज' (golden muse) मैरी-थेरेस वाल्टर को दर्शाती है। 1932 पिकासो और वाल्टर के भावुक रिश्ते का चरम था। यह चित्र पिकासो की विशिष्ट क्यूबिस्ट शैली और उनके चित्र-निर्माण के बेहतरीन उदाहरणों में से एक है। इसमें चमकीले रंगों और सुडौल वक्रों (voluptuous curves) का उपयोग करके वाल्टर की सुंदरता को दर्शाया गया है। नवंबर 2023 में, न्यूयॉर्क में सोथबी (Sotheby's) की नीलामी में 'फेम ए ला मोंट्रे' 139 मिलियन डॉलर (लगभग 11.57 अरब रुपये) से अधिक में बिकी। यह नीलामी में बिकने वाली पिकासो की दूसरी सबसे महंगी कलाकृति बन गई।

पॉब्लो पिकासो के बारे में

पॉब्लो पिकासो स्पेनिश स्पेनिश चित्रकार, मूर्तिकार, प्रिंटमेकर और सिरेमिक कलाकार थे। उनका जन्म 1881 में हुआ और निधन 1973 में। उनकी गिनती दुनिया के प्रसिद्ध चित्रकारों में होती है, जिनकी एक-एक पेंटिंग करोड़ों-अरबों रुपये में बिकती है। पिकासो ने अपने जीवनकाल में 20,000 से ज्यादा कृतियां रचीं। उनकी कलात्मक यात्रा विभिन्न कालखंडों से गुजरी। भावनात्मक रूप से आवेशित ब्लू एरा से लेकर पिंक एरा तक। क्यूबिज्म की ज्यामितीय सफलताओं और उनके बाद के सिरेमिक कार्यों तक, जो उनके आजीवन प्रयोग की भावना को दर्शाते हैं। उनकी प्रतिष्ठित पेंटिंग 'फेमे आ ला मोंट्रे' ने 2023 में सोथबी में 139 मिलियन डॉलर की रिकॉर्ड कीमत हासिल की, जो उनकी उत्कृष्ट कृतियों की स्थायी मांग को रेखांकित करती है। चित्रकला के अलावा, पिकासो ने प्रिंट, रेखाचित्र और चीनी मिट्टी की वस्तुओं की एक विस्तृत श्रृंखला तैयार की। उनकी कला आंदोलनों, देशों और दशकों तक फैली हुई है, जिसमें अंतरंग चित्रों से लेकर 'ग्वेर्निका' जैसे साहसिक राजनीतिक बयानों तक, सब कुछ समाहित है।